देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
JUNE 2021
VOL. 13, ISSUE 6(1)

Impact Factor
3.811

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना विशेषांक

प्रधान सम्पादक :
प्रो० शकुन्तला

सम्पादक :
डॉ० नरेश सिहाग एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना विशेषांक

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	प्रो० शकुन्तला	08–09
2.	नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना	रीना कुमारी	10–15
3.	भारतेन्दु युग में राष्ट्रीय चेतना के तत्व	डॉ० सुधीर कुमार विश्वकर्मा	16–20
4.	आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीयता के विविध सोपान	डॉ० निशा वालिया	21–24
5.	प्रसाद के काव्य में राष्ट्रीय चेतना	पीयूष कुमार	25–29
6.	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान ('भारत-भारती' काव्यकृति के संदर्भ में)	विरेश० बिसनल्लि	30–32
7.	राष्ट्रीयता का अर्थ – परिभाषा	डॉ० पंडित बन्ने	33–36
8.	जयशंकर प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय चेतना	निघोंट अर्चना महादेवराय	37–41
9.	स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय परिदृश्य और रेणु का कविकर्म	डॉ० सुभाषचन्द्र गुप्त	42–49
10.	कबीर वाणी में राष्ट्रीय चेतना	डॉ० प्रीति के	50–53
11.	जयशंकर प्रसाद के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना	डॉ० मनोज कुमार सिंह	54–57
12.	भारतीय पत्रकारिता में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति	डॉ० हिमानी सिंह	58–62
13.	हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के संवाहक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	डॉ० सत्यनारायण स्नेही	63–67
14.	प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना	डॉ० सी० मोहना	68–71
15.	भारत माता के अमर यश गायक और स्वतंत्रता के महत्वाकांक्षी श्री मैथिलीशरणगुप्त	डॉ० शोभना कोक्काडन, डॉ० बी० अनिरुद्धन	72–77
16.	आदिवासी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना 'जो इतिहास में नहीं है' के विशेष संदर्भ में	डॉ० हर्षलता वी० शाह	78–80
17.	भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना (सन्त काव्य के विशेष संदर्भ में)	डॉ० मुनीश कुमार	81–84
18.	डॉ. कैलाशचंद्र शर्मा शंकी के कथा साहित्य में राष्ट्रीय चेतना	प्रिंस विनायक, डॉ० नरेश कुमार सिहाग	85–87

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
JUNE 2021 Page No. : 42-49

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय परिदृश्य और रेणु का कविकर्म

–डॉ0 सुभाषचन्द्र गुप्त

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी–विभाग, करीम सिटी कॉलेज, जमशेदपुर, झारखण्ड।

प्रेमचन्द की कथा–चेतना के वाहक फणीश्वरनाथ रेणु जितने महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं, उतने ही महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार भी। पर उनकी रचनाशीलता का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है उनकी कविताएँ। यह ठीक है कि उन्होंने विपुल मात्रा में काव्य–सृजन नहीं किया, पर अपनी कविताओं के रूप में जो कुछ भी रचा है, उससे हिन्दी की प्रगतिशील काव्यधारा प्राणवान व वेगवान हुई है। सच यह है कि रेणुजी की रचना–यात्रा कविता से ही शुरू हुई थी। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि एक कथाकार के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने के बाद भी उन्होंने कविता लिखना बंद नहीं किया। उनकी पहली कविता साप्ताहिक विश्वमित्र के होली विशेषांक 26 फरवरी 1945 को प्रकाशित हुई थी और उनकी अंतिम कविता आपातकाल के दौरान साप्ताहिक धर्मयुग के 26 जून 1977 अंक में प्रकाशित हुई थी। इस तरह काव्य–सर्जन के स्तर पर भी उनकी निरन्तरता व गतिशीलता बनी रही। उन्होंने अपनी पहली कविता से अंतिम कविता तक की बत्तीस वर्षीय काव्य–यात्रा में मात्र तीस कविताएँ लिखी जो प्रकाशित भी हैं और उपलब्ध भी हैं, लेकिन ये तमाम कविताएँ अपने समय और समाज के विविध परिदृश्यों से पूरी जनपक्षधरता व संघर्षशीलता के साथ जुड़ी हैं। बाबा नागार्जुन ने लिखा है –''फणीश्वरनाथ रेणु की साहित्य–सर्जना का आरंभ कविता से ही हुआ था। पूर्णिया नगर से निकलने वाले उस युग के (40–50) साप्ताहिकों की फाइलें यदि कहीं मिल जाएँ तो रेणु की तुकबंदियों और मुक्त छन्दों के अनेक नमूने हासिल होगें।''[1]

रेणु के लिए कविता जीवनबोध व समयबोध की आत्म परिभाषी संवाद की प्रक्रिया रही है। अपने एक संस्मरणात्मक लेख 'अपने–अपने त्रिलोचन' में रेणु लिखते हैं –''कविता मेरे समझने–बूझने या समझाने का विषय नहीं है, जीने का विषय है। कवि नहीं बन सका, यह कसक सदा मेरे कलेजे में सालती रहेगी।''[2] दरअसल रेणु ने जिस दौर में लिखना शुरू किया, वह जटिलाओं, संशयों अन्तर्विरोधों और सामाजिक–राजनीतिक व वैचारिक टकराहटों का दौर था जिसकी समग्र अभिव्यक्ति कविताओं के जरिए संभव नहीं थी। वस्तुतः ''साहित्य के रूपों का विकास समाज के विकास से जुड़ा होता है, इसलिए साहित्य–रूपों की संरचना का उस सामाजिक संरचना से गहरा संबंध होता है जिसमें साहित्य के रूप पैदा होते हैं। प्रत्येक साहित्य–रूप का एक विचारधारात्मक आधार भी होता है जो सामाजिक विकास की विशेष अवस्था में व्याप्त विचारधारा से प्रेरित और प्रभावित होता हैं महाकाव्य का जन्म सामंती दौर से पहले के जनपक्षीय समाजों में हुआ था और उसका विकास सामंती समाजों में होता रहा। ऐसे सामाजिक आधार के कारण ही महाकाव्यों की संरचना में एक ओर जनपदीय समाजों का खुलापन मिलता है, तो दूसरी ओर सामंती समाजों की सांस्कृतिक और विचारधारात्मक परिणतियों की अभिव्यक्ति भी.....सामंती समाज–व्यवस्था के अंत के साथ दुनिया भर में महाकाव्यों का युग समाप्त होता दिखायी देता है। आधुनिक काल में यह काम उपन्यास के माध्यम से होने लगा है, इसलिए उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य भी कहा जाता है। उसमें सामाजिक यथार्थ की जटिल समग्रता का चित्रण ही नहीं, विश्लेषण भी होता है।.